

योग दर्शन का परिचय

योगदर्शन छः आस्तिक दर्शनों (षड्दर्शन) में से एक है। इसके प्रणेता पतञ्जलि मुनि हैं। यह दर्शन सांख्य दर्शन के 'पूरक दर्शन' के नाम से प्रसिद्ध है। इस दर्शन का प्रमुख लक्ष्य मनुष्य को वह मार्ग दिखाना है जिस पर चलकर वह जीवन के परम लक्ष्य (मोक्ष) की प्राप्ति कर सके। अन्य दर्शनों की भांति योगदर्शन तत्त्वमीमांसा के प्रश्नों (जगत क्या है, जीव क्या है?, आदि) में न उलझकर मुख्यतः मोक्षप्राप्ति या कैवल्य प्राप्ति के उपाय बताने वाले दर्शन की प्रस्तुति करता है। किन्तु मोक्ष पर चर्चा करने वाले प्रत्येक दर्शन की कोई न कोई तात्त्विक पृष्ठभूमि होनी आवश्यक है। अतः इस हेतु योगदर्शन, सांख्यदर्शन का सहारा लेता है और उसके द्वारा प्रतिपादित तत्त्वमीमांसा को स्वीकार कर लेता है। इसलिये प्रारम्भ से ही योगदर्शन, सांख्यदर्शन से जुड़ा हुआ है। प्रकृति, पुरुष के स्वरूप के साथ ईश्वर के अस्तित्व को मिलाकर मनुष्य जीवन की आध्यात्मिक, मानसिक और शारीरिक उन्नति के लिये दर्शन का एक बड़ा व्यावहारिक और मनोवैज्ञानिक रूप योगदर्शन में प्रस्तुत किया गया है। इसका प्रारम्भ पतञ्जलि मुनि के योगसूत्रों से होता है। योगसूत्रों की सर्वोत्तम व्याख्या व्यास मुनि द्वारा लिखित व्यासभाष्य में प्राप्त होती है। इसमें बताया गया है कि किस प्रकार मनुष्य अपने मन (चित) की वृत्तियों पर नियन्त्रण रखकर जीवन में सफल हो सकता है और अपने अन्तिम लक्ष्य निर्वाण को प्राप्त कर सकता है।

योगदर्शन, सांख्य की तरह द्वैतवादी है। सांख्य के तत्त्वमीमांसा को पूर्ण रूप से स्वीकारते हुए उसमें केवल 'ईश्वर' को जोड़ देता है। इसलिये योगदर्शन को 'सेश्वर सांख्य' (स + ईश्वर सांख्य) कहते हैं और सांख्य को 'निरीश्वर सांख्य' कहा जाता है।

योगदर्शन में पुरुष तत्व केंद्रीय विषय के रूप में प्रस्तुत हुआ है। यद्यपि पुरुष और प्रकृति दोनों की स्वतंत्र सत्ता मानी गयी है परन्तु तात्विक रूप में पुरुष की सत्ता ही सर्वोच्च है। पुरुष के दो भेद कहे गये हैं। पुरुष को चैतन्य एवं अपरिणामी कहा गया है, किन्तु अविद्या के कारण पुरुष जड़ एवं परिणाम चित्त में स्वयं को आरोपित कर लेता है। पुरुष और चित्त के संयुक्त हो जाने पर विवेक जाता रहता है और पुरुष स्वयं को चित्त रूप में अनुभव करने लगता है। यह अज्ञान ही पुरुष के समस्त दुःखों, क्लेशों का कारण है। योग दर्शन का उद्देश्य पुरुष को इस दुःख से, अज्ञान से, मुक्त कराना है। इसी तथ्य को सैद्धान्तिक रूप से योग दर्शन में हेय, हेय-हेतु, हान और हानोपाय के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इन चार क्रमों में पुरुष दुःखों से मुक्ति पाता है, इसलिये योग में इसे 'चतुर्व्यूहवाद' कहा गया है एवं इस चतुर्व्यूह से मुक्त होना ही योग का परम उद्देश्य है। चतुर्व्यूहवाद की विवेचना में ही योग दर्शन में पुरुष, पुरुषार्थ और पुरुषार्थशून्यता का दर्शन प्रकट होता है। पुरुष अविद्याग्रस्त होने पर संसार-चक्र में पड़ता है और पुरुषार्थशून्यता की अवस्था को प्राप्त करता है। पुरुष का परम लक्ष्य कैवल्य की प्राप्ति है। योग में पुरुष को आत्मा का पर्याय माना गया है। अतः आत्मा, जो कि संख्या में असंख्य है, उसकी कैवल्य प्राप्ति तभी हो सकती है जब चतुर्व्यूह का पुरुषार्थ साधन कर दुःख के त्रिविध रूपों का सामाधान कर लिया जाय। दुःख के तीन रूप हैं - आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक। पुरुषार्थशून्यता इन त्रितापों से ऊपर की अवस्था है। पुरुषार्थशून्यता के पश्चात् ही पुरुष की अपने स्वरूप की स्थिति होती है। योगदर्शन में इसे ही कैवल्य अथवा मोक्ष कहा गया है।

पतंजलि को कपिल द्वारा बताया गया सांख्यदर्शन ही अभिमत है। थोड़े में, इस दर्शन के अनुसार इस जगत् में असंख्य पुरुष हैं और एक प्रधान या मूल प्रकृति। पुरुष चित् है, प्रधान अचित्। पुरुष नित्य है और अपरिवर्तनशील, प्रधान भी नित्य है परंतु परिवर्तनशील। दोनों एक दूसरे से सदा पृथक हैं, परंतु एक प्रकार से एक का दूसरे पर प्रभाव पड़ता है। पुरुष के सान्निध्य से प्रकृति में परिवर्तन होने लगते हैं। वह क्षुब्ध हो उठती है। पहले उसमें महत् या बुद्धि की उत्पत्ति होती है, फिर अहंकार की, फिर मन की। अहंकार से ज्ञानेंद्रियों और कर्मेन्द्रियों तथा पाँच तन्मात्राओं अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध की, अंत में इन पाँचों से आकाश, वायु, तेज, अप और क्षिति नाम के महाभूतों की। इन सबके संयोग वियोग से इस विश्व का खेल हो रहा है। संक्षेप में, यही सृष्टि का क्रम है। प्रकृति में परिवर्तन भले ही हो परंतु पुरुष ज्यों का त्यों रहता है। फिर भी एक बात होती है। जैसे श्वेत स्फटिक के सामने रंग बिरंगे फूलों को लाने से उसपर उनका रंगीन प्रतिबिंब पड़ता है, इसी प्रकार पुरुष पर प्राकृतिक विकृतियों के प्रतिबिंब पड़ते हैं। क्रमशः वह बुद्धि से लेकर क्षिति तक से रंजित प्रतीत होता है, अपने को प्रकृति के इन विकारों से संबद्ध मानने लगता है। आज अपने को धनी, निर्धन, बलवान् दुर्बल, कुटुंबी, सुखी, दुःखी, आदि मान रहा है। अपने शुद्ध रूप से दूर जा पड़ा है। यह उसका भ्रम, अविद्या है। प्रधान से बने हुए इन पदार्थों ने उसके रूप को ढँक रखा है, उसके ऊपर कई तह खोल पड़ गई है। यदि वह इन खोलों, इन आवरणों को दूर फेंक दे तो उसका छुटकारा हो जायगा। जिस क्रम से बँधा है, उसके उलटे क्रम से बंधन टूटेंगे। पहले महाभूतों से ऊपर उठना होगा। अंत में प्रधान की ओर से मुँह फेरना होगा। यह बंधन वास्तविक नहीं है, परंतु बहुत ही दृढ़ प्रतीत होते हैं। जिस उपयोग से बंधनों को तोड़कर पुरुष अपने शुद्ध स्वरूप में स्थित हो सके उस उपाय का नाम योग है। योग का यही दार्शनिक धरातल है: अविद्या के दूर होने पर जो अवस्था होती है उसका वर्णन विभिन्न आचार्यों और विचारकों के विभिन्न ढंग से किया है। अपने-अपने

विचार के अनुसार उन्होंने उसको पृथक नाम भी दिए हैं। कोई उसे कैवल्य कहता है, कोई मोक्ष, कोई निर्वाण। ऊपर पहुँचकर जिसको जैसा अनुभव हो वह उसे उस प्रकार कहे। वस्तुतः वह अवस्था ऐसी है, यतो वाचो निवर्तते अप्राप्य मनसा सह - जहाँ मन और वाणी की पहुँच नहीं है। थोड़े से शब्दों में एक और बात का भी चर्चा कर देना आवश्यक है। असंख्य पुरुषों के साथ पतंजलि ने 'पुरुष विशेष' नाम से ईश्वर की सत्ता को भी माना है। सांख्य के आचार्य ऐसा नहीं मानते। वस्तुतः मानने की आवश्यकता भी नहीं है। यदि योगदर्शन में से वह थोड़े से सूत्र निकाल भी लें तो कोई अंतर नहीं पड़ता। योग की साधना की दृष्टि से ईश्वर को मानने, न मानने का विशेष महत्व नहीं है। ईश्वर की सत्ता को मानने वाले और न मानने वाले, दोनों योग में समान रूप से अधिकार रखते हैं।